## प्रवचन–6, गाथा–17-18

यह 'समयसार', 17-18 गाथा! आज हिन्दी में चलती है। ऊपर (लिखा) है न पहले? **अब, इसी प्रयोजन को दो गाथाओं में दृष्टान्तपूर्वक कहते हैं –** क्या कहते हैं? कि यह आत्मा जो है, उसमें निश्चयदर्शन, ज्ञान और चारित्र (है), वह भी भेद और व्यवहार है। एक आत्मा का सेवन करना, यह निश्चय और यथार्थ है। सोलहवीं गाथा में यह कहा। (अब) इसी बात के प्रयोजन को इन (दो गाथाओं) में कहते हैं। सोलहवीं गाथा (में यह कहा) –

**दंसणणाणचरित्ताणि सेविदव्वाणि साहुणा णिच्चं।**
**ताणि पुण जाण तिण्णि वि अप्पाणं चेव णिच्छयदो॥**

निश्चयस्वभाव के आश्रय से उत्पन्न हुआ (– ऐसा) सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र – ए व्यवहार है। तीन भेद हुआ न? (इसलिए) व्यवहार (कहा) है। तीन (भेद से) रहित एक (रूप) चैतन्यमूर्ति का सेवन करना, चैतन्यमूर्ति का अनुभव करना – वह निश्चय एक है। यह प्रयोजन (अब) 17-18 गाथा में कहते हैं। (यहाँ) कहा न? **अब, इसी प्रयोजन को... इसी प्रयोजन को** अर्थात् आत्मा का सेवन करना, श्रद्धा-ज्ञान करना। आत्मा का (सेवन) करना, (अर्थात्) श्रद्धा-ज्ञान – ऐसे भेद भी नहीं; आत्मा का अनुभव करना। **इसी प्रयोजन को हम दो गाथाओं में दृष्टान्तपूर्वक कहते हैं।**

**जह णाम को वि पुरिसो रायाणं जाणिऊण सद्दहदि।**
**तो तं अणुचरदि पुणो अत्थत्थीओ पयज़ेण॥17॥**
**एवं हि जीवराया णादव्वो तह य सद्दहेदव्वो।**
**अणुचरिदव्वो य पुणो सो चेव दु मोज़्खकामेण॥18॥**

**ज्यों पुरुष कोई नृपति को भी, जानकर श्रद्धा करे।**
**फिर यत्न से धन अर्थ वो, अनुचरण राजा का करै॥17॥**

**जीवराज को यों जानना, फिर श्रद्धना इस रीति से।**
**उसका ही करना अनुचरण, फिर मोक्ष अर्थी यत्न से॥18॥**

टीका – प्रथम दृष्टान्त देते हैं। **निश्चय से जैसे कोई धन का अर्थी...** 'धन का अर्थी' (कहा है)। धन का अर्थी न हो, उसकी यहाँ बात नहीं (है)। जिसको धन चाहिए और धन की जिसको लालसा है – ऐसा, **धन का अर्थी पुरुष बहुत उद्यम से पहले तो राजा को जाने...** (यहाँ) राजा की बात ली है; सेठ की बात नहीं ली है। कोई करोड़पति या अरबपति सेठ (हो), उसकी सेवा करे – ऐसे नहीं लिया है। राजा की सेवा करे, (– ऐसा कहा)। जैसे, धन का अर्थी (पुरुष), राजा की सेवा करे। पहले तो राजा को जाने कि 'यह राजा है'; उसके लक्षण से, उसके पुण्य से, उसके परिवेश से, उसकी ऋद्धि से, यह राजा है – ऐसा जाने, **कि यह राजा है, फिर उसी का श्रद्धान करे...** पहले यह राजा है, उसे जाने। कौन (ऐसा जाने)? (कि) धन का अर्थी! जो धन का अर्थी नहीं है, उसको कोई राजा की, सेठिया की या देव की दरकार नहीं है। जो लक्ष्मी का अर्थी है, वह प्रथम राजा को जाने। (यहाँ) राजा लिया है – कोई करोड़पति, अरबपति बनिये को–सेठ को नहीं लिया है, क्योंकि राजा के पास लक्ष्मी स्थायी होती है और राजा के पास पूर्व पुण्य के कारण से अरबों रुपये तो (ऐसे ही) आते हैं; इसलिए राजा लिया है।

(कहते हैं) **राजा को पहले जाने कि यह राजा है, फिर उसी का श्रद्धान करे...** जानने के बाद श्रद्धान करे। (पहले) श्रद्धान करे (फिर) जाने – ऐसा नहीं (लिया है)। पहले उसके चिह्न से 'यह राजा है' – ऐसा जाने, बाद में उसकी श्रद्धा करे **कि यह अवश्य राजा ही है...** उसके चिह्न से, उसकी ऋद्धि से, उसके परिवेश से, उसके पुण्य से, उसके बाहर के शरीर की ऋद्धि को देखकर – 'यह राजा है' – ऐसा जानकर, उसकी श्रद्धा (करे)। (उसकी श्रद्धा) जानकर करे। वचन 'पहले जानकर' यहाँ है। 'यह राजा ही है' – (ऐसा) निर्णय करे कि, यहाँ राजा ही है। *'राज्यते इति शोभते इति राजा।'*

**इसकी सेवा करने से अवश्य धन की प्राप्ति होगी...** (इस) राजा की सेवा करने से जरूर इसके पास से लक्ष्मी मिलेगी। (वैसे तो) लक्ष्मी पुण्य से मिलती है परन्तु यहाँ

तो दृष्टान्त है। राजा ही लक्ष्मी दे सकता है न? वह तो पूर्व के पुण्य हो तो लक्ष्मी आती है। पुण्य से (भले) आती है परन्तु पैसा है, यह तो पाप है क्योंकि भगवान ने उसको परिग्रह में गिना है। पूर्व के पुण्य से मिले (जरूर) परन्तु (जो) चीज मिली है, वह पाप है – परिग्रह है। इस राजा के पास परिग्रह बहुत है, यह जानकर (उसकी) सेवा करने से अवश्य धन की प्राप्ति होगी। उसकी सेवा करने से, उसके पास लक्ष्मी बहुत है, तो सेवा करने से मुझे लक्ष्मी मिलेगी।

**फिर उसी का अनुचरण करे...** पहले ज्ञान हुआ, श्रद्धा हुई फिर अनुचरण करे। दृष्टान्त में अभी पहले ज्ञान लिया है, (फिर) श्रद्धा (ली है), आहा...हा...! **सेवा करे, आज्ञा में रहे, उसे प्रसन्न करे;...** लक्ष्मी लेने के लिए राजा को प्रसन्न करे। यह तो दृष्टान्त है। आहा...हा...!

**इसी प्रकार मोक्षार्थी....** जैसे, (दृष्टान्त में) वह धन का अर्थी, राजा को जाने – श्रद्धा करे और सेवा करे (– ऐसा लिया था), ऐसे (सिद्धान्त में) मोक्षार्थी (लिया है)। यह शर्त! (मोक्षार्थी, अर्थात्) जिसको अनन्त आनन्द का लाभ–ऐसा मोक्ष (चाहिए)। अतीन्द्रिय अनन्त आनन्द की प्राप्ति का नाम मोक्ष। इस अतीन्द्रिय आनन्द की प्राप्ति का जो अर्थी है, (वह मोक्षार्थी है)। संसार का अर्थी – दुःख का अर्थी, वह नहीं (लिया)। (यहाँ तो) जिसे संसार के कोई भी काम की इच्छा नहीं (है), (परन्तु) एक मोक्ष की ही इच्छा है (ऐसा मोक्षार्थी लिया है)। मुझे परम अतीन्द्रिय आनन्द मिले – ऐसी (जिसे) आशा है – ऐसा मोक्षार्थी (होता है)। मोक्षार्थी(पने की) यह शर्त (है)। दुःख से मुक्त होना और आनन्द की प्राप्ति होना, (यह मोक्ष है)। दुःख से मुक्त होना, यह नास्ति से है और आनन्द की प्राप्ति, यह अस्ति से है; (इसलिए) जिसको अतीन्द्रिय आनन्द की प्राप्ति की इच्छा है, (वह मोक्षार्थी है)। यह शर्त! धर्म पानेवाले के लिए यह प्रथम शर्त (है) – मोक्षार्थी! आ...हा...हा...!

मोक्ष, अर्थात् सर्वथा दुःख से मुक्त होना और पूर्ण आनन्द का लाभ होना, वह मोक्ष (है)। (ऐसे) **मोक्षार्थी पुरुष को पहले तो आत्मा को जानना चाहिए,...** देखो! आ...हा...हा...! क्या शब्द लिया (है)? **मोक्षार्थी पुरुष को पहले तो आत्मा को जानना**

**चाहिए...** ऐसा कुछ नहीं लिया कि देव-गुरु-शास्त्र को जानना या शास्त्र वाँचन करना या ऐसा सुनना – यह बात ली नहीं। यह सब व्यवहार नहीं लिया। पहले क्या करना? इसमें (यह सब) नहीं लिया। सीधी बात करना (अर्थात्), पहले तो आत्मा को जानना चाहिए, ओ...हो...हो...!

अन्दर भगवान आत्मा कैसा है? उसे मोक्षार्थी (को) पहले जानना चाहिए। नव तत्त्व को जानना या देव, गुरु, शास्त्र को जानना – ऐसी बात ली नहीं। पहले यह करना – ऐसा लिया है। पहले आत्मा का ही ज्ञान करना – ऐसे लिया है। समझ में आया? दूसरी चीज उसके पास है, यह बात यहाँ नहीं (कही)। आत्मा क्या है? बाहर में देव, गुरु को सुनुं, (उनकी) सेवा करूँ – तो (आत्मा) मिले, यह प्रश्न यहाँ नहीं है, क्योंकि ऐसी बात है ही नहीं। 'मैं भगवान की भक्ति करूँ, यात्रा करूँ, शास्त्र का वाँचन करूँ तो आत्मा मिलेगा' – यह बात है ही नहीं। पहले यह दो शर्त ली है।

**मुमुक्षु :** तो फिर मन्दिरों की क्या जरूरत है?

**समाधान :** मन्दिरों का भी प्रश्न यहाँ है नहीं; वह तो उसके कारण होता है। (उसे बनाने का) शुभभाव हो तो उसकी बात यहाँ है नहीं। सूक्ष्म बात है, भाई! 17–18 (गाथा) लेने को कहा था न? हमारे धनकुमारजी ने! 17-18 (गाथा) हिन्दी में लेने को आपने कहा था!

धन्नालालजी कहते कि यह मन्दिर (बनाते हैं, वह क्या है?) वह तो (ऐसा) शुभभाव हो, तब बनने की चीज बनती है। (ऐसा) शुभभाव करे तो मन्दिर बनता है – ऐसा है नहीं। मन्दिर के एक-एक परमाणु की उस-उस काल में उसकी जो पर्याय होनेवाली है, (वह) उससे होती है। दूसरा मन्दिर करानेवाला (ऐसा) माने कि मेरे से मन्दिर होता है – (तो) यह बात पूर्ण – सोलह आना झूठी है। आहा...हा...! झवेरचन्दभाई! आप कुछ करते हैं न? बापू! सूक्ष्म बात है, भगवान!

जो (जीव) मोक्ष का कामी है (अर्थात्), अनन्त आनन्दरूपी मोक्ष (जिसे चाहिए, वह मोक्षार्थी है)। 'नियमसार' में लिया है कि मोक्ष क्या है? (कि) अनन्त अतीन्द्रिय

आनन्द का लाभ, यह मोक्ष (है) – ऐसा 'नियमसार' में लिया है। क्या कहा?

मोक्ष का अर्थ क्या? (कि) अनन्त अतीन्द्रिय आनन्द का लाभ लेना, यह मोक्ष (है)। संसार में तो सब दुःख (है)। पैसा मिला, स्त्री–कुटुम्ब मिला, ये सब दुःख (है)। संसार (में) दुःख (ही है), आहा...हा...! उसकी बात तो यहाँ है नहीं, परन्तु पहले देव, गुरु, शास्त्र की सेवा करना, (उनकी) देशना सुनना... दूसरी जगह (ऐसा) आये कि पहले देशना होती है परन्तु यहाँ यह बात ली नहीं, (क्योंकि) यह व्यवहार है। आहा...हा...!

यहाँ तो प्रथम में प्रथम (यह कहा कि) आत्मा को जानना चाहिए। आ...हा...हा...! निमित्त को जानना चाहिए, यह भी नहीं लिया; राग को जानना, यह भी नहीं लिया; उसकी एक समय की पर्याय को जानना, यह भी नहीं लिया। आहा...हा...! समझ में आया? सीधी आत्मद्रव्य को (जानने की) बात ली है। पहले आत्मा को जानना! आत्मद्रव्य को जानना। गुण–गुणी के भेद को भी पहले नहीं (जानना)। आहा...हा...! पर्याय को भी नहीं, राग को तो नहीं (और) निमित्त को (भी) नहीं। आहा...हा...! पहले ही...! मोक्षार्थीपुरुष को पहले तो...! जैसे, धन का अर्थी पहले राजा को जाने; वैसे आत्मार्थी (मोक्षार्थी), पहले आत्मा को जाने, आहा...हा...!

(पहले आत्मा को जाने) तो यह सब व्यवहार कहाँ जाएगा? (तो कहते हैं) उसके कारण से उस समय में होता है तो हो, उस पर उसका (मोक्षार्थी का) लक्ष्य नहीं (है)। बाहर की चीज तो उस समय क्रमबद्ध(पर्याय में) आनेवाली होती है तो होती है; उसका लक्ष्य कराया नहीं। आ...हा...हा...! भभूतमलजी!

तो यह मन्दिर कराया (बनवाया), यह क्या है? आठ लाख डाला है उसने। मन्दिर (बनाने) ने। एक (ने) भी आठ लाख (डाला है)। आठ लाख डाले तो क्या है? करोड़ डाले या पाँच करोड़ (रुपये) डाले तो क्या हुआ? वह तो परचीज है! उसमें तो राग की मन्दता – शुभभाव होता है। यह शुभभाव, धर्म नहीं (है) और शुभभाव धर्म का कारण भी नहीं (है)।

पहले यह शब्द लिया है। है अन्दर? मोक्षार्थी को...! जैसे धन का अर्थी राजा को जाने, जानने के बाद श्रद्धा करे, फिर अनुचरण करे; वैसे पहले मोक्षार्थी को... आ...हा...हा...!

पहले आत्मा को जानना। आहा...हा...हा...! भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द और चैतन्यघन, विज्ञानघन प्रभु आत्मा एकरूप है। विज्ञानघन (है) – ऐसा भेद भी नहीं करना। एकरूप चैतन्य है, आ...हा...हा...! सूक्ष्म बात है! पहले जिसको धर्मी कहना हो, अर्थात् धर्म जिसको करना हो, अर्थात् मोक्ष की भावना हो, उसको पहले में पहले आत्मा को जानना। नव तत्त्वों को जानना – ऐसा भी कहा नहीं। देव–गुरु–शास्त्र को पहले जानना, यह कहा नहीं। वह बात तो अन्तर में पहले साधारण आ जाती है; वह कोई चीज नहीं; उसको कोई आत्मा का ज्ञान हो जाता है – ऐसा नहीं (है)। आ...हा...हा...!

**मुमुक्षु :** सीधेसीधुं हाथ में आवी जाय?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** सीधा आ जाता है, यह बात है। बात यह कहते हैं। दूसरा व्यवहार है, उससे प्राप्त होता ही नहीं; इसलिए तो पहले यह शब्द लिया है। व्यवहार आता है तो व्यवहार से आत्मा का ज्ञान होता है (ऐसा नहीं है)। लाख मन्दिर बनाया, पुस्तकें लाख-करोड़ बनायी। 'सोनगढ़' से 22 लाख (पुस्तकें छपी) हैं। पण्डितजी की तरफ से आठ लाख (छपी) हैं। ये पुस्तकें बनायी तो आत्मा जानने में आता है – ऐसी बात नहीं ली है। भगवानजी भाई! सूक्ष्म बात है, भाई! आहा...हा...!

पहले में पहले...! शर्त ये (है) – जो मोक्ष का अर्थी होता है तो – यह शर्त! राग का अर्थी हो, पुण्य का अर्थी हो, मान का अर्थी हो – वह तो धर्म की शुरुआत में भी आता नहीं, वह धर्म पाने के योग्य नहीं। आहा...हा...! समझ में आया? लक्ष्मी का अर्थी हो, इज्जत का अर्थी हो, बड़प्पन का अर्थी हो (अर्थात्), दूसरे से ज्यादा हमको बड़प्पन मिलेगा – यह कोई शर्त यहाँ है नहीं – यह सब संसार है, आहा...हा...!

मोक्षार्थी को (अर्थात्), जिसको आत्मा के अनन्त आनन्द का लाभ लेना है, ऐसी प्रयोजनभूत चीज को जिसे लेना हो, उसको पहले... पहले तो राजा को (जीवराज को) जानना। इस शब्द में बहुत गम्भीरता है! पहले में पहले भगवान आत्मा को जान! – ऐसे लिया है। समकित बाद में। जानने के बाद श्रद्धा (होती है)। जो चीज जानने में आयी नहीं, उसकी श्रद्धा क्या करना? गधे का सींग, खरगोश का सींग है नहीं तो जानने में आता नहीं, तो प्रतीति किसकी? वैसे पहले आत्मा क्या है? (यह) उसके जानने में आता नहीं तो प्रतीति

किसकी? आहा...हा...!

पहले में पहले आत्मा को जानना चाहिए – शब्द ऐसा लिया है। पहले में पहले आत्मा को जानना चाहिए, आहा...हा...! संसार की सब जिज्ञासा, संसार का सब प्रयोजन का भाव छोड़कर, (आत्मा को जानना), आहा...हा...! मैंने इतनी लक्ष्मी दी तो उससे मुझे कुछ धर्म होगा, मैं समकित सन्मुख हो जाऊँगा, यह बात है नहीं। मन्दिर में 25 लाख खर्च किये तो हम कुछ धर्म की सन्मुख होंगे, यह बात है नहीं। कठिन बात है भगवान!

**मुमुक्षु :** यह पहले क्यों नहीं कहा?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** उसमें पहले आता ही नहीं, इसलिए नहीं कहा। उससे आत्मा का ज्ञान होता नहीं; इसलिए यह (आत्मा को जानने का पहले) कहा है। आहा...हा...हा...! यह तो धनकुमार सेठ ने हिन्दी में लेने को कहा था न? आहा...हा...हा...!

पहले शुभ(भाव) करो – दया, दान, व्रत–शुभ करो तो शुद्ध/धर्म होगा – ऐसी बात है नहीं। पहले राग की मन्दता का (भाव) – दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, दान आदि विशेष करो तो आगे बढ़ेंगे, यह बात यहाँ है नहीं। यहाँ तो सीधा भगवान आत्मा...! पूर्णानन्द का नाथ! (है, उसको पहले जानना)। (जो) मोक्ष का अर्थी है, उसको पहले में पहले सीधा आत्मा को जानना।

आत्मा का दर्शन, ज्ञान, चारित्र – ऐसा भेद को जानना, ऐसा भी कहा नहीं। सोलहवीं गाथा में कहा है, उसका अर्थ यहाँ है। सोलहवीं गाथा में कहा था – **दंसणणाणचरित्ताणि सेविदव्वाणि साहुणा णिच्चं।** साधु को, मुनिराज को हमेशा सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र का सेवन करना – ऐसा सोलहवीं गाथा में पहले पद में कहा। बाद में कहा – वह तीनों आत्मा है; तीन भेद नहीं। आहा...हा...! **णिच्छयदो अप्पाणं** – वही प्रयोजन यहाँ 17-18 गाथा में सिद्ध किया है। एक आत्मा...! आ...हा...हा...! पूर्णानन्द का नाथ, शुद्ध चिद्बिम्ब, ध्रुव, सामान्य, एक अतीन्द्रिय प्रभु की अनन्त शक्तियों का पिण्ड, ऐसा आत्मा...! ऐसा गुण का पिण्ड – ऐसा भी नहीं। यह तो समझने में (भेद) आता है। सीधा आत्मा को जानना...! आ...हा...हा...! गजब बात है, भाई!

सामान्य मनुष्य को तो (ऐसा लगे कि!) पहले यह करें, यह करें, यह करें... बाद

में यह मिलेगा – ऐसा कुछ है नहीं।

**मुमुक्षु :** जैसे, गाँव बीच में आता है, वैसे यह भी बीच में आता है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** आये, आये... (लेकिन) उसको छोड़ना। वह तो पहले कहा न? दोपहर को कहा था – जहाँ जाना है, वह लक्ष्य में (रहता) है (और) बीच में नगर आते हैं, उसको छोड़ देता है। यहाँ (तो) बीच की बात ही नहीं, छोड़ (देते) हैं, वह बात ही नहीं। जिस नगर में जाना है और बीच में छोड़ना है, वह भी बात यहाँ नहीं। आ...हा...हा...! पर को छोड़ देना, यह भी व्यवहार है; राग को छोड़ना, वह भी व्यवहार है। राग का नाश करना, वह भी नाम(मात्र) कथन है। आत्मा (के आश्रय से) राग का नाश करना, यह भी नाम(मात्र) कथन है। परमार्थ से आत्मा, राग का नाश कर्ता है नहीं। आत्मा तो आनन्दस्वरूप में (स्थिर) होता है तो राग की उत्पत्ति होती नहीं, तो राग का नाश किया – ऐसा नाममात्र कथन से कहने में आया है। आहा...हा...! यह 34 वीं गाथा में आया है।

यहाँ कहते हैं, **(मोक्षार्थी)पुरुष को पहले...** 'पुरुष' को (अर्थात्), आत्मा को। 'मोक्षार्थी पुरुष', अर्थात्, 'आदमी' ही – ऐसा कुछ नहीं। 'मोक्षार्थी पुरुष', अर्थात्, आत्मा। (चाहे तो) स्त्री का आत्मा हो (या) नपुंसक का आत्मा हो। नरक में नीचे जो नारकी हैं, (वहाँ) तो अकेले नपुंसक ही हैं। माँस, दारू–शराब (जो) पीते हैं, उन सबका देह छोड़कर (रहने का) स्थान नरक है। कोई माने या न माने – इससे कोई वस्तु(स्थिति) पलट नहीं जाती। (कोई ऐसा कहे कि) 'बस! अभी यह करो, फिर कुछ नहीं है।' 'कुछ है नहीं' (कहता है, लेकिन वहाँ) तेरा दुःख है, मरकर दुःख (भोगने को) नरक में जायेगा। माँस आदि (खाकर) नरक में जायेगा, यह बात तो यहाँ कही नहीं; वैसे ही पुण्य करके स्वर्ग में जायेगा, यह बात भी यहाँ कही नहीं। यहाँ तो जिसको आत्मा के मोक्ष की इच्छा है, (उसकी बात है), आहा...हा...!

गृहस्थाश्रम में हो, बालक हो,... इसमें 'आबाल–गोपाल' आयेगा! आयेगा इसमें। 'आबाल–गोपाल' (अर्थात्), बालक से लेकर वृद्ध सबको पहले में पहले करने के योग्य हो तो... मोक्षार्थी जीव को पहले आत्मा जानना। आत्मा की पर्याय को जानना, यह भी नहीं कहा; व्यवहार जानने को भी नहीं कहा; निमित्त को जानो, यह भी नहीं कहा! आहा...हा...!

उसमें है या नहीं? **हिन्दी तो सरल भाषा है, बहुत सरल है!** (हमको) ऐसी कोई आप लोगों की हिन्दी आती नहीं। आपके सेठ ने कहा, धनकुमार ने कहा, यह हिन्दी में पढ़े।

आहा...हा...! पहले तो आत्मा को जानना। हिन्दी में पहले यह आया है! आहा...हा...! मीठालालजी! वे चार लाख रुपये (मन्दिर में) पैसे खर्च किये, इसलिए धर्म होगा, नजदीक होगा नजदीक! ऐसा नहीं है। उसने चार लाख डाले हैं, किसी ने आठ लाख डाले हैं। बैंगलोर! दोनों (ने) मिलाकर बारह लाख! बारह लाख क्या करोड़ (रुपये) डाले नहीं, उसमें कुछ राग की मन्दता हो तो पुण्य है, यह बात यहाँ है नहीं। यहाँ तो 'मोक्षार्थी'...! (बस, उसकी ही बात है)। आहा...हा...!

'श्रीमद्' में आता है ना? मात्र मोक्ष का काम है। 'मात्र मोक्ष अभिलाष'! है, (ऐसा) शब्द है। 'आत्मसिद्धि' में (आता है)। 'मात्र मोक्ष अभिलाष'! 'मात्र' मोक्ष अभिलाष!! 'मात्र' (अर्थात्), आत्मा के सिवा कोई चीज की अभिलाषा नहीं। एक ही मोक्ष! मेरी आनन्द की दशा! मेरे अतीन्द्रिय आनन्द की पूर्ण दशा मुझे चाहिए! इसके सिवा कोई चाहना है नहीं – ऐसी मोक्ष की अभिलाषा है, उस जीव को पहले में पहले **आत्मा को जानना चाहिए...** आ...हा...हा...! नव तत्त्व को भी जानना कहा नहीं, भगवान अरहन्त को जानना (या) पञ्च परमेष्ठी को जानना, यह भी कहा नहीं, क्योंकि वह तो अनन्त बार जाना है और अनन्त बार व्यवहार आ गया है। यह आया नहीं – प्रथम आत्मा क्या चीज है? – वह आया नहीं। आहा...हा...!

**पहले तो आत्मा को जानना,...** (इसमें) बहुत गम्भीरता भरी है! बहुत गम्भीरता...! एक भगवान पूर्णानन्द प्रभु! एकरूप! दोरूप भी नहीं (अर्थात्), गुणी-आत्मा और ज्ञान–दर्शन गुण – ऐसा भेद भी नहीं। आहा...हा...! सीधा आत्मा को जानना। पञ्चम काल के सन्त, पञ्चम काल के श्रोता को यह बात कहते हैं! कोई ऐसा कहे कि 'ऐसी बात तो चौथे काल में चले!' (तो) यह बात क्या है? (एक) हजार वर्ष पहले (अमृतचन्द्राचार्य) मुनि हुए; दो हजार वर्ष पहले 'कुन्दकुन्दाचार्य' हुए, वह भी पञ्चम काल में! तो पञ्चम काल के सन्त, पञ्चम काल के श्रोता को पहले यहाँ से बात करते हैं! समझ में आया? (ऐसा नहीं कहा है कि) 'पहले तुम ऐसा करो, पहले ऐसा करो, बाद में ऐसा करो और

दान करो, (पहले राग की) मन्दता करो, बाद में यह होगा!' (यहाँ तो) पञ्चम काल के सन्त, पञ्चम काल के श्रोता को (पहले में पहले आत्मा को जानना – ऐसा कहते हैं!)। (महावीर) भगवान के पीछे 2000 वर्ष बाद 'कुन्दकुन्दाचार्य' हुए; बाद में (एक) हजार वर्ष के बाद 'अमृतचन्द्राचार्य' हुए। आहा...हा...! 'कुन्दकुन्दाचार्य' तो छह सौ साल (बाद) गये (थे), अभी से दो हजार वर्ष पहले गये थे लेकिन भगवान के (निर्वाण) बाद छह सौ साल (बाद गये)। यहाँ से दो हजार वर्ष पहले। यहाँ से एक हजार वर्ष पहले 'अमृतचन्द्राचार्य' (हुए)। दोनों ने बात यह कही है! सब बात छोड़कर...! आ...हा...हा...! 'भगवान की पूजा करो, हमेशा सेवा करो तो तुझे लाभ होगा!' (ऐसी) कोई बात है नहीं। आहा...हा...! यह 17-18 गाथा के शब्दों में गम्भीरता भरी है। (कोई ऐसा कहे कि) 'पहले तू आत्मा को जान। आहा...हा...! प्रभु पहले तुम सुनाओ कि आत्मा क्या है? – बाद में हम जान सकते हैं न?' यह बात भी यहाँ है नहीं। समझ में आया?

**श्रोता :** बहुत कठिन पड़े!

**पूज्य गुरुदेवश्री :** बहुत कठिन पड़े? दुनिया में कुछ कठिन पड़ता नहीं। देश को छोड़कर, माँ–बाप, कुटुम्ब, रिश्तेदार आदि को (छोड़कर), परदेश में भटकता है, वह कठिन पड़ता नहीं! कुटुम्ब को वहाँ छोड़कर, यहाँ भटकता है! कितने हजारों मील दूर (यहाँ भटकता है)! यह बात इसको कभी रुचि ही नहीं। अन्तर में उसकी दरकार (कभी) की ही नहीं। जिसकी दरकार करनी चाहिए, उसकी दरकार की नहीं। जिसकी जरूरत नहीं, उसकी दरकार सारा दिन की – धन्धा-व्यापार, स्त्री, पुत्र, कुटुम्ब, धन, ब्याज पैदा किया, इतने पैसे हुए! आहा...हा...! करोड़ों रुपये का मन्दिर बनाया; इसलिए धर्म से नजदीक होगा और सम्यग्दर्शन पाने के योग्य होगा – ऐसी बात यहाँ है नहीं।

**श्रोता :** ऐसा उपदेश पहले दिया होता तो यह मन्दिर बनवाते नहीं न!

**पूज्य गुरुदेवश्री :** कौन बनवाता है? वह तो शुभभाव हो (और) बनने के योग्य है, उस काल में बनेगा। इस शुभभाव से मन्दिर बनेगा, यह बात है नहीं। कहो, लक्ष्मीचन्दभाई! देखो! लक्ष्मीचन्दभाई, जेठालालभाई आये, सब सेठ बैठे हैं, उसने कहा मन्दिर बनाने के

लिये कुछ करें। मन्दिर तो परमाणु की रचना है; आत्मा को बिल्कुल लाभ नहीं। वह परमाणु–रजकण जो हैं, (वह) अनन्त परमाणु का पिण्ड (है)। जैसे यह अंगुली है, वह अनन्त परमाणु का पिण्ड है। यह (कोई) एक चीज नहीं है, यह एक चीज नहीं है, यह तो अनन्त रजकण का पिण्ड है। उसको शास्त्रभाषा में 'स्कन्ध' कहते हैं, 'स्कन्ध'! (एक से) अधिक परमाणु मिले, उसको शास्त्र में 'स्कन्ध' कहा है, तो यह स्कन्ध है, एक चीज नहीं। उसका टुकड़ा करते... करते... करते... आखिर का छोटे में छोटा पॉइन्ट रहे, उसको 'परमाणु' कहते हैं। उस परमाणु में भी उस समय में उसकी अपनी अवस्था होने का काल है तो परमाणु की अवस्था होती है; दूसरे परमाणु के कारण से अवस्था होती है, यह (बात) भी नहीं (है)। तो दूसरे आदमी से मन्दिर होता है, यह (बात) भी नहीं (है)। कठिन काम, भाई! लक्ष्मीचन्दभाई! ऐसी बात है, प्रभु! आहा...हा...!

**श्रोता :** सामने दिखता है तो भी नहीं?

**समाधान :** जो नहीं दिखता, वह यह है! देखा नहीं, वह यह है और बाकी सब देखा है! बाकी सब बाहर में धूल देखी है! राजा अनन्त बार हुआ है, अरबों की महीने की कमाई (हो) – ऐसा राजा अनन्त बार हुआ है! और सौ बार मांगे और एक कवल (ग्रास) मिले – ऐसा भिखारी अनन्त बार हुआ है! और करोड़ों रुपये का मन्दिर भी अनन्त बार बनाया है, पूर्व में अनन्त बार बनाया है! वह कोई (नयी) चीज नहीं। आहा...हा...! गजब बात है, भाई! हिन्दी में आया, उसमें (भी) पहले यह आया!

'प्रथम में प्रथम आत्मा को जानना चाहिए' – यह शब्द लिया है। संवर, निर्जरा को जानना या मोक्षार्थी को मोक्ष जानना – ऐसे पहले नहीं लिया। क्या कहा? मोक्षार्थी को मोक्ष को जानना – ऐसे नहीं लिया। समझ में आया? मोक्षार्थी को आत्मा जानना – ऐसे लिया है। मोक्षार्थी को, मोक्ष क्या है? यह पहले जानने में लिया नहीं, क्योंकि मोक्ष है, यह पर्याय है। मोक्ष पर्याय है, सिद्ध की पर्याय है। मोक्षार्थी को – मोक्ष की पर्याय के प्रयोजनवान को, मोक्ष की पर्याय जानना – ऐसा नहीं कहा। आहा...हा...! उसे संवर, निर्जरा को पहले जानना, यह भी नहीं कहा। आहा...हा...! ऐसी बात है, प्रभु! उसमें यह परदेश–अनार्य देश! उसमें ऐसी बातें!! बात तो ऐसी है, प्रभु! अन्तर की दरकार कभी की ही नहीं। चार

गति में भटकते-भटकते नरक और निगोद के अनन्त भव किये तो भी आत्मा का कुछ (कल्याण) हुआ नहीं।

यहाँ तो कहते हैं, पहले में पहले **आत्मा को जानना चाहिए...** ऐसे लिया है। कहो, जेठालालभाई !

**श्रोता :** तैयार शिष्य को लिया है !

**पूज्य गुरुदेवश्री :** जो पात्र जीव है, जो मोक्ष का अर्थी है, उसको लिया है। जो कुछ पुण्य का अर्थी, विषय का अर्थी, मान का अर्थी, इज्जत का अर्थी, धूल का अर्थी (अर्थात्), यह पैसे–करोड़–दो करोड़ होते हैं, उसका अर्थी (हो), यह बात यहाँ ली नहीं; वह योग्य है नहीं ! आ...हा...हा... ! मोक्ष का अर्थी... ! मोक्ष के अर्थी को मोक्ष जानना – ऐसे भी लिया नहीं, आहा...हा... ! है न अन्दर देखो ! **मोक्षार्थी पुरुष को पहले...** ऐसे शब्द पड़े हैं। मोक्षार्थी को पहले मोक्ष को जानना – ऐसे यहाँ पहले लिया नहीं; तो (फिर) पुण्य करना, यह करना, उससे आत्मा (प्राप्त) होता है – यह प्रश्न यहाँ है ही नहीं। भगवान आत्मा का ज्ञान किसी भी पर की अपेक्षा रखे बिना होता है। राग की इतनी मन्दता की और बाद में आत्मा का ज्ञान होता है – ऐसी अपेक्षा आत्मा को जानने में है नहीं। आहा...हा... ! गजब बात है !

सेठिया हो तो लाख, दो लाख, पाँच लाख, पचीस लाख खर्च करे तो मानो (क्या कर दिया !) दूसरे लोग उसे 'धर्म धुरन्धर' का पद दें ! 'धर्म धुरन्धर' ! यहाँ तो ध्येय आत्मा जो है, आहा...हा... ! पहले में पहले... ! गजब बात है ! मोक्षार्थी को पहले मोक्ष जानना, यह भी नहीं लिया। तब फिर संवर, निर्जरा, पुण्य को (जानना) और मन्दिर बनाना, पहले यह बनवाना और बाद में आत्मा को जानना, यह बात तो ली ही नहीं। आहा...हा... ! सीधा मार्ग यही है ! जिसे (धर्म करना हो, उसे) सीधा इस आत्मा को जानना ! सीधा... ! इसको जानने में, पर की कोई अपेक्षा है नहीं; इसलिए भगवान के यह वचन हैं ! (और) मुनिराज, जगत के पास यह प्रसिद्ध करते हैं ! दुनिया को रुचे न रुचे, समाज साथ रहे न रहे, (नग्न मुनि को किसी का बन्धन नहीं)। 'नागा, बादशाह से आधा' ! उनको कोई परवाह नहीं कि यह बात किसी को नहीं रुचे और विरोध करेगा (तो) ? (वह) उसके पास रहे ! विरोध करनेवाला

कोई है नहीं, आहा...हा...!

मोक्षार्थी को...! गजब बात कही है न! आ...हा...हा...! मोक्ष के अर्थी को मोक्ष जानना – ऐसे नहीं कहा, क्योंकि मोक्ष है, वह पर्याय है; पर्याय है, वह भेष है; पर्याय है, यह आत्मा का एक भेष है – 'समयसार' में आया है। संवर, निर्जरा भी एक भेष है (और) मोक्ष भी एक भेष है; वस्तु नहीं। यह तो पर्याय का एक भेष है, आहा...हा...! परन्तु जो एक (मात्र) मोक्ष की पर्याय चाहता है, उसको सीधा... (आत्मा को जानना)। आहा...हा...! पर की अपेक्षा छोड़कर (अर्थात्), ऐसा करूँ तो ऐसा मिलेगा – ऐसी अपेक्षा छोड़कर (सीधा आत्मा को जानना)।

तीन लोक के नाथ जिनेश्वरदेव की दिव्यध्वनि में यह आया! उसे सन्त...! पञ्चम काल के सन्त! सीधे भगवान के पास गये थे, वहाँ से आकर 'आढ़तिया' होकर यह बात करते हैं! 'भगवान ऐसा कहते हैं! वह हम कहते हैं!' ऐसा कहते हैं। आहा...हा...!

**श्रोता :** देशना सुनने से होता है न?

**समाधान :** देशना सुनने की यहाँ गिनती नहीं है! (क्योंकि) देशना अनन्त बार सुनी और अन्दर गया नहीं। देशना अनन्त बार सुनी है!

**श्रोता :** यह देशना अलग प्रकार की है!

**पूज्य गुरुदेवश्री :** अलग प्रकार की है! देशना आती अवश्य है परन्तु देशना आयी; इसलिए प्राप्त हो जाये – ऐसा नहीं; इसलिए यह शब्द लिये हैं। आहा...हा...! सूक्ष्म बात है, **प्रभु! आज तो तेरहवाँ दिन हुआ! अब इतना सूक्ष्म आया!** आहा...! उसे क्रमबद्ध होगा; इसलिए आत्मा को जानना – ऐसे शब्द भी लिये नहीं। क्रमबद्ध होनेवाला है, इसलिए नहीं, (परन्तु) आत्मा को जान, उसमें वह क्रमबद्ध है, वह बात आ जायेगी! आहा...हा...! क्योंकि क्रमबद्ध में अकर्तापना बताया है। आत्मा, राग का और पर्याय का अकर्ता है; सीधा आत्मा, आत्मा का (कर्ता) है, तो सीधी आत्मा की बात ली है, आहा...हा...! वहाँ तो अकर्ता बताया है न? क्रमबद्ध में तो अकर्ता बताया है। पर्याय का भी अकर्ता! तो वह बात यहाँ ली नहीं। आ...हा...हा...! यहाँ तो पर्याय में सीधा आत्मा को जानना... जानने में आता है पर्याय में, परन्तु पर्याय में जानना – आत्मा! पर्याय (में) पर्याय

को जानना – ऐसा भी कहा नहीं। आहा...हा...! सूक्ष्म बात है, प्रभु!

सारी दुनिया को जानते हैं! (हम तो) दुनिया में बहुत घूमे हैं, काठियावाड़ में और हिन्दी (भाषी प्रान्त में) तो कलकत्ता, जयपुर, दिल्ली सब जगह जाकर आये हैं। सब जगह व्याख्यान दिये हैं। बड़े-बड़े शहर, अहमदाबाद आदि सब जगह गये हैं। बापू! यह मार्ग कोई अलग है! आहा...हा...!

अभी (तो) ऐसी बात आने से उसे ऐसा लगे कि, 'यह बात तो बहुत कठिन है, इसलिए कुछ दूसरा चाहिए।' – तो कहते हैं कि वह आत्मा को प्राप्त करने के लिये योग्य नहीं है। आहा...हा...!

**श्रोता :** (बात) बहुत सूक्ष्म है, थोड़ी स्थूल नहीं हो सकती?

**समाधान :** सूक्ष्म कहाँ (है)? उसके स्वयं के घर की (बात है)! उसे सूक्ष्म कहना या स्थूल कहना, उसके घर की बात है, घर के अन्दर है। आत्मा घर के अन्दर महा प्रभु पड़ा है! आहा...हा...! एक घण्टा पूजा और भक्ति कर ली, इसलिए कल्याण हो जायेगा (यदि ऐसा मानता है तो) धूल में भी नहीं होगा!! ऐ...ई...! निहालभाई! (किसी को) पूछा था कि, 'कुछ करते हो?' (तो कहा कि) 'हम एक घण्टा भगवान की पूजा करते हैं!' उस एक घण्टे (पूजा करने) से कुछ होनेवाला नहीं – ऐसा कहते हैं। उसमें कुछ गति बदल जाये – ऐसा है नहीं। आ...हा...हा...!

यहाँ तो कहते हैं कि पहले में पहले... नाथ! आत्मराजा! (दृष्टान्त में) जैसे सीधा राजा को जाने – ऐसा कहा। उसमें ऐसा नहीं कहा कि 'बनिये को जाने या ब्राह्मण को जाने या अमुक को जाने!' (बल्कि सीधा) राजा को जाने! 'राज्यते इति शोभते इति राजा'! आहा...हा...! उसके दीदार दिखे, शरीर में पुण्य दिखे, उसके आभूषण, गहने, कपड़े देखकर लगे कि 'यह तो राजा है।' जैसे सीधा जिसने राजा को देखा हो, उस राजा को जानकर, उसकी श्रद्धा करके, लक्ष्मी का अर्थी जो है... लोभी...! धन का अर्थी जो लोभी...! वह राजा की सेवा करे – ऐसा कहा।

इसी प्रकार मोक्ष का अर्थी आत्मा! वह आत्मराजा की सेवा करे! ऐसा कहा है।

आत्मा का सीधा सेवन करना – ऐसा कहा ! ऐसा कहा नहीं कि कोई गरीब की सेवा करना, उसकी सेवा करे – ऐसा कहा नहीं। राजा के सिवा कोई सेठिया की सेवा करना – ऐसा भी यहाँ कहा नहीं, क्योंकि राजा के पास लक्ष्मी इतनी होती है... इस समय में अभी तो राजा साधारण हो गये हैं, (बाकी तो) पहले के जो राजा होते थे, उसकी करोड़ों की, अरबों की कमाई एक दिन की होती है ! तो पैसा, अर्थात् धूल (है) उसके पास ! ऐसे राजा को सीधा जानना – ऐसा कहा। कोई अमुक को जाने, ऐसा कहा नहीं; धन के अर्थी को राजा को जानना, ऐसा कहा, यह तो दृष्टान्त हुआ।

इस प्रकार मोक्षार्थी को... ! आ...हा...हा... ! गजब बात है, प्रभु ! आ...हा...हा... ! प्रथम में प्रथम **आत्मा को जानना चाहिए,...** शब्द यह पड़े हैं। कौन यह कहते हैं ? मुनि ! किसको कहते हैं ? पञ्चम काल के श्रोता को ! कोई ऐसा कहे कि 'ऐसी बात तो चौथे काल में चले अथवा ऐसी बात तो मुनि के लिये होती है ! यह 'समयसार' मुनि के लिए हैं !' ऐसा कोई कहता है तो उसकी सब बात उड़ा दी ! (कोई कहे कि) 'समयसार' है, यह तो मुनि के लिये हैं ! चौथे काल की बात है ! यह (बात तो) पञ्चम काल के साधु पञ्चम काल के श्रोता को – मोक्ष अर्थी हो, उसे पञ्चम काल के मुनि, (पञ्चम काल के) श्रोता को ऐसा कहते हैं ! ! पहले आत्मा को जान ! (लेकिन) 'प्रभु ! इतनी सारी बात !' इतनी सारी कोई बात नहीं है ! प्रभु अन्दर भगवान विराजता है ! सत्चिदानन्द प्रभु ! अनन्त परमेश्वर ! अनन्त गुण का परमेश्वर ! 38 वीं गाथा में कहा। 38 वीं गाथा में वह (बात आयी)। 38 गाथा... ! 'अपने परमेश्वर को भूल गया !' सबेरे दातून करते समय सोना निकालकर हाथ में (रखा था, वह) भूल गया ! कहाँ है ! सोना कहाँ है ? यह रहा ! ओह ! यह रहा ! ऐसे आत्मा तो अन्दर है परन्तु राग की एकताबुद्धि में भूल गया। दया, दान, पूजा, भक्ति का राग – इस राग की एकता में आत्मा को भूल गया। आहा...हा... ! इस आत्मा को प्रथम जानना चाहिए – ऐसे कहा है। प्रथम जानना चाहिए। मोक्षार्थी को प्रथम आत्मा जानना चाहिए। आ...हा...हा... ! पञ्चम काल में – ऐसे कठिन काल में प्रभु ! पहले ऐसे करना, यह आप की बात बहुत कठिन पड़ती है। कठिन पड़े या नहीं पड़े, प्रभु ! मार्ग तो यह है। कोई पर की अपेक्षा से आत्मा जानने में आये और अनुभव–सम्यग्दर्शन हो

– ऐसी चीज है नहीं।

कोई पुण्य–दान किया, भक्ति किया, ऐसा किया, पचास लाख खर्च कर दिया, करोड़ खर्च कर दिये... बनिया इतने सारे तो खर्च करे नहीं... लेकिन कदाचित् करोड़ – दो करोड़ खर्च कर दिया तो उससे कुछ धर्म (हो जाये – ऐसा नहीं है)। और (कोई) ऐसा लोभी हो (तो कहे कि) 'एक तखती हमारी लगा दो कि, हमने इस मकान (मन्दिर) में पाँच करोड़ दिये हैं! हमारी तखती लगाओ!' तखती लगाने में तस्दी लेते हैं!! तस्दी, अर्थात् मेहनत। अपनी तखती लगाने में मेहनत करते हैं कि 'मैंने दस लाख, पचास लाख दिया है(तो) मेरा नाम उसमें लिखो!' उसमें तीन–चार नाम लिखे! फलाना के द्वारा ये फलाना देनेवाला! सही फलाने की...!! सब देखा है न हमने तो! आहा...हा...! यहाँ यह बात नहीं है, नाथ!

**श्रोता :** पैसे दिये हैं तो लिखाते हैं!

**पूज्य गुरुदेवश्री :** (लेकिन) आत्मा में क्या आया? बहुत मेहनत करे, जिसको दिये हो वह नहीं (लिखे) तो मित्रों को कहे कि, 'मेरा नाम लिखना! दो–पाँच आदमी को बात करो!' ऐसा मित्रों को कहे!! ऐसा कहकर तस्दी–मेहनत करे! तस्दी–मेहनत करके तखती लगावे। वह भटकने की तस्दी है। यहाँ तो अलग बात है। भभूतमलजी! आहा...हा...!

यहाँ तो प्रभु, परमात्मा (यह फरमाते हैं)। 'कुन्दकुन्दाचार्य' कहे (– ऐसा) कहो या 'अमृतचन्द्राचार्य' कहे (– ऐसा) कहो या परमात्मा कहे (– ऐसा) कहो, सब एक ही है, क्योंकि आत्मा में पञ्च परमेष्ठी होने की योग्यता है। पञ्च परमेष्ठी (होने की) योग्यता भरी है, आत्मा में पञ्च परमेष्ठी, अर्थात् अरहन्त सिद्ध होने की योग्यता पड़ी है, इसको जानो! आहा...हा...! है (पाठ में)? **और फिर उसी का श्रद्धान करना...** (पहले) जानना, फिर श्रद्धान करना (ऐसा कहते हैं)। जो जानने में आया नहीं, उसकी श्रद्धा कैसी? ज्ञान में वह चीज आयी नहीं और (कहे कि) उसकी श्रद्धा करो! खरगोश के सींग नहीं है (और कहे कि) श्रद्धा करो! परन्तु जानने में आया नहीं (तो) श्रद्धा कैसे करे? सींग है नहीं (तो) जानने में आया नहीं, वैसे ही जो चीज जानने में आयी नहीं, उसकी श्रद्धा कैसी? समझ में आया? पहले जानना चाहिए **और फिर...** (श्रद्धा करनी), ऐसे लिया है।

**और फिर उसी का...** 'उसी का', अर्थात् आत्मा जाना उसका। उसी का, अर्थात् आत्मा का **श्रद्धान करना चाहिए...** उसकी श्रद्धा करनी चाहिए। आहा...हा...! जाननेवाले की श्रद्धा करना। जाननेवाला जानने में आया... जाननेवाला जानने में आया, इस जाननेवाले की श्रद्धा करना। जो जानने में आया है, उसकी श्रद्धा करना। जो चीज जानने में आयी नहीं, उसका कैसे विश्वास आये? किसका विश्वास करना? आहा...हा...!

यहाँ कहा कि **और फिर...** ऐसा जानकर, फिर **उसी का श्रद्धान करना चाहिए...** फिर; अर्थात्, अकेला जानना (ऐसे) नहीं रहना, (बल्कि) जानकर श्रद्धा करना। भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप है – ऐसा जानकर उसकी श्रद्धा करना। जानना, फिर श्रद्धान करना। 'तत्त्वार्थसूत्र' में तो पहले सम्यग्दर्शन लिया है। 'सम्यग्दर्शन-ज्ञान -चारित्राणि मोक्षमार्गः' वहाँ सम्यग्दर्शन की प्रधानता लेकर, बाद में ज्ञान लिया है। यहाँ (यह कहते हैं कि) जो चीज जानने में नहीं आयी, उसकी श्रद्धा कैसे हो? ज्ञान में आत्मा क्या है? पूर्णानन्द शुद्ध चैतन्यघन आनन्दकन्द (है) – ऐसे ज्ञान में आया नहीं, ज्ञान में जाना नहीं, ज्ञान में ज्ञेय हुआ नहीं, उसकी श्रद्धा कैसी? जिस ज्ञान में वह ज्ञेय आया नहीं, (अर्थात्), परज्ञेय छोड़कर स्वज्ञेय आया नहीं और स्वज्ञेय (ज्ञान में) आये बिना, उसकी श्रद्धा कैसी? किसकी श्रद्धा की? समझ में आया? आहा...!

**फिर उसी का...** 'फिर' शब्द लिया है न? जानना, फिर श्रद्धा करना, इस प्रकार 'फिर' (शब्द) लिया है। आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द प्रभु, शुद्धघन, विज्ञान पिण्ड – ऐसा अन्दर ज्ञान (हुआ), अनुभव हुआ, स्वज्ञेय का ज्ञान हुआ (और) परज्ञेय का ज्ञान छूट गया, तब फिर उसकी श्रद्धा करना। जो चीज ज्ञान में आयी है, उसकी श्रद्धा करना, आ...हा...हा...! हिन्दी भी सादी भाषा है। बहनों-बेटियों को भी समझ में आये, ऐसा है। बात बहुत अच्छी आयी है! आहा...हा...!

**आत्मा को जानना चाहिए, और फिर...** 'फिर' में (ऐसा कहना है कि) जाना हुआ (है), उसकी श्रद्धा करना (कि) 'ज्ञायकस्वरूप आनन्दमूर्ति मैं हूँ।' यह मैं हूँ – यह भी विकल्प है। जानने में जो आया कि पूर्णानन्द शुद्ध चैतन्य ऐसा है, उसकी प्रतीत करना – यह समकित है। जानने में आयी चीज का फिर श्रद्धान करना, उसका नाम समकित है

– ऐसा यहाँ लिया है। ज्ञान पहले लिया है और श्रद्धा बाद में ली है। तत्त्वार्थसूत्र में सम्यग्दर्शन पहले लिया है और ज्ञान बाद में लिया है, क्योंकि वहाँ तत्त्वार्थश्रद्धान में तत्त्वार्थ लेना है न! नव (तत्त्व) लेना है। वहाँ है एकवचन। नव तत्त्व का वचन, एकवचन में है; बहुवचन नहीं। नव का एकवचन है। आत्मा को जानकर, आठ तत्त्व जानने में आये तो एकवचन हुआ; एक ही जानने में आया। यहाँ भी जानने में एक ही आया है। यहाँ भी एक ही आत्मा जानना **और फिर उसी का श्रद्धान करना चाहिए...** क्या (श्रद्धान करना चाहिए?) कि **यही आत्मा है,...** ज्ञान में आया है कि यही आत्मा है, आहा...हा...! प्रत्यक्ष हुआ है।

आत्मा में एक 'प्रकाश' नाम का गुण है, इस गुण के कारण आत्मा को जानते हैं तो प्रत्यक्ष हो जाता है। क्या कहा? पीछे (परिशिष्ट में) 47 शक्ति हैं न! 47 शक्ति! उसमें बारहवीं 'प्रकाशशक्ति' है। जीवत्व, चिति, दृशि, ज्ञान, सुख, वीर्य, प्रभुत्व, विभुत्व, सर्वदर्शी, सर्वज्ञ, स्वच्छत्व और प्रकाश – बारहवीं (शक्ति) है। 47 शक्ति हैं, (उसमें) बारहवीं शक्ति में ऐसा कहा है कि आत्मा में एक प्रकाश नाम का गुण है कि जो गुण स्वसंवेदन प्रत्यक्ष हो जाता है। ध्यान के काल में प्रत्यक्ष होता है; परोक्ष रहता नहीं। सम्यग्दर्शन के (काल में) ज्ञान से प्रत्यक्ष हो जाता है। सम्यग्दर्शन में तो प्रतीति है। सम्यग्दर्शन कुछ जानता नहीं, यह तो प्रतीति है परन्तु पहले सारा आत्मा जानने में आया (कि) पूर्णानन्द का नाथ यह पूर्ण है – यह जानना, फिर उसकी श्रद्धा करना। ओ...हो...हो...! **करना चाहिए...** ऐसे लिया है। **फिर उसी का श्रद्धान करना चाहिए...** किसको कहते हैं? पञ्चम काल के श्रोता को कहते हैं। श्रोता साधारण है और श्रोता को यह नहीं रुचेगा – ऐसी दरकार है नहीं।

तेरे में केवलज्ञान लेने की ताकत है। एक समय में केवलज्ञान लेने की ताकत है, तो आत्मा को जानने की ताकत की बात करना, यह कोई बड़ी बात नहीं है। समझ में आया? आहा...हा...! वही आत्मा है। **श्रद्धान करना चाहिए कि 'यही आत्मा है'...** रागरहित (है), यह बात भी ली नहीं। यह नास्ति से बात है। आत्मा रागरहित है, पर्यायरहित है, भेदरहित है – ऐसा नहीं लिया। (यहाँ तो) सीधा आत्मा जाना, उसकी फिर श्रद्धा करनी

चाहिए कि **यही आत्मा है,...** (अर्थात्), यह आत्मा! (ऐसा) ज्ञान में जानने में आया। आहा...हा...! गुड़ का मीठापन ख्याल में आया (तो) यह गुड़ है! गुड़ है न गुड़? ख्याल में आया कि मीठापन है तो यह गुड़ है, वैसे ही आत्मा के आनन्द का अनुभव हुआ तो 'यह आत्मा है!' ऐसी श्रद्धा जानने के बाद होती है; जाने बिना श्रद्धा होती नहीं, आहा...हा...! ऐसी बात है! **यही आत्मा है,...** (ऐसी श्रद्धा होने के बाद) क्या करना? श्रद्धा में क्या होता है?

श्रद्धा में क्या होता है? कि – **उसका आचरण करने से अवश्य कर्मों से छूटा जा सकेगा...** उसका आचरण करने से कर्मों से छूटा जायेगा – ऐसा श्रद्धा में आता है। आचरण कोई शुभभाव करेगा – ऐसा नहीं। उसका आचरण करने से (छूटा जायेगा) – ऐसा श्रद्धा में आता है। समकित में ऐसा आता है कि उसका आचरण करने से अवश्य कर्मों से छूटा जा सकेगा। उसकी विशेष बात आयेगी...! (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)